



हिन्दी कहानी और आदिवासी अस्मिता के प्रश्न

शैलेन्द्र प्रताप

शोधार्थी, हिन्दी विभाग, दिल्ली विश्वविद्यालय, दिल्ली, भारत।

प्रस्तावना

भारत में आदिवासी समाज एक ऐसा जन समूह है जो आज भी समाज की मुख्यधारा से कटा हुआ विकास और वैज्ञानिकता से अछूता अपनी वीरान दुनिया में सिमटा हुआ है। विज्ञान और तकनीकी के विकास के साथ मुख्यधारा का समाज जैसे जैसे उसकी ओर बढ़ता गया वह अपनी जीवन शैली परम्पराओं और खासियतों को सुरक्षित और संरक्षित करने के लिए उससे दूरी बनाता रहा। लेकिन पूंजीवादी विकास और संसाधनों की भूख ने उनकी विशेषताओं और संरचनाओं को तहस-नहस कर डाला। धीरे-धीरे इस समुदाय के अन्दर भी विचलन पैदा हुआ और आज यह समुदाय अपने अस्तित्व और अस्मिता के संकट से गुजर रहा है।

बीसवीं शताब्दी के उत्तरार्द्ध में कथित विकास की प्रक्रिया ने आदिवासी समाज के हितों पर बहुत कुठाराघात किया। इस वजह से अस्मिता-संकट की दृष्टि से आदिवासी समाज का विश्लेषण करना जरूरी है। आज हम कहने को तो उत्तरआधुनिक दौर में जी रहे हैं और विकास के चरमलक्ष्य को प्राप्त करने का दावा भी कर रहे हैं, किन्तु क्या कारण है कि सभ्यता की तमाम चकाचौंध के बीच आदिवासी समाज आज भी खुद को उपेक्षित और अपमानित महसूस करता है? जाहिर है विकास की प्रक्रिया के साथ उसका सही संतुलन नहीं बन पाया। हमारे यहाँ विकास के नाम पर आदिवासी समाज के साथ अन्याय ही होता रहा है। अजीब विडम्बना है कि बढ़ती जनसंख्या से परेशान दुनिया में बहुत से ऐसे आदिवासी समूह हैं जो लुप्त होने की कगार पर हैं।

विज्ञान और तकनीकी की दुनिया इन समुदायों में लगातार असुरक्षा और डर का भाव पैदा कर रही है जो गम्भीर चिंता का विषय है। विकास के साथ यदि हाशिए पर खड़ा मनुष्य अपना सहज रिश्ता नहीं बना पाता है तो ऐसा विकास अधूरा ही रह जायेगा। 'भारत में आदिवासी विकास के संबंध में आज मूल बिन्दू सही सिद्धान्तों का प्रतिपादन नहीं है वरन् मुख्य प्रश्न है उन सामाजिक-आर्थिक बलों को सही प्रकृति के एहसास का जो यहाँ पर या तो क्रियाशील हो चुके हैं अथवा इन क्षेत्रों के खुलते जाने के साथ जिनके क्रियाशील होने की पूरी सम्भावना है। इस संक्रमणशील दौर में उनके विकास मार्ग को सुनियोजित करना अनिवार्य है।'¹

भारत में जनजातीय समाज की जनसंख्या लगभग तीन से चार करोड़ है लेकिन उनके विकास के लिए सरकार के पास कोई सार्थक नीति नहीं है। सुरक्षा कर्मियों की उपस्थिति ही वहाँ सरकार के होने का एहसास दिलाती है। विकास के नाम पर आदिवासी समाज से जल, जंगल, जमीन और अन्य प्राकृतिक संसाधनों को छिन कर उन्हें विस्थापन के लिए मजबूर किया जा रहा है। जिसका परिणाम है कि आज इस समुदाय का अस्तित्व खतरे में है।

दरअसल आदिवासी समाज शुरु से ही अपनी अस्मिता और पहचान को लेकर असुरक्षित महसूस करता रहा है। आज 21वीं सदी में जब

मुख्यधारा का समाज आधुनिकता की चकाचौंध में जी रहा है, वहीं मुख्यधारा से दूर आदिवासी समाज विकास की रोशनी से महरूम अपना जीवन व्यतीत कर रहा है। जहाँ न तो जीवन का मानवीय स्वरूप दृष्टिगोचर होता है और न ही लोगों के मन में भविष्य को लेकर कोई सार्थक सपना उमड़ता है। आदिवासी जीवन की इतनी जीवन दशाओं को हिन्दी कथा-साहित्य में केन्द्रीय विषय के रूप में चित्रित किया गया है। आदिवासी जीवन के तनावों दुःखों, यातनाओं तथा इन सबके बीच उनकी खुद को जिन्दा रखने की जद्दोजहद और विपरीत परिस्थितियों में जूझते हुए निरन्तर संघर्ष करने की शक्ति को उजागर किया गया है।

समकालीन हिन्दी कथा-साहित्य में आदिवासी अस्मिता के विभिन्न रूपों को रेखांकित किया गया है। उसमें आदिवासी जीवन प्रामाणिकता के साथ विद्यमान है। इसमें उस जनजीवन का वर्णन है जो शिक्षा, सम्पदा और संस्कृति के आलोक वृत्त से बाहर है। यह हाशिए पर पड़ा जनजीवन ज्ञान तथा सिद्धांत से नहीं बल्कि अपने विश्वासों, संस्कारों और रीति-रिवाजों से संचालित होता है। उन्हीं से रस ग्रहण करता है तथा उन्हीं के आलोक में अपने जीवन मूल्यों तथा अस्मिताओं को परिभाषित करता है।

आदिवासी अस्मिता के प्रश्न को हिन्दी कहानी में सचेत ढंग से उठाया गया है। हिन्दी के तमाम कथाकारों ने आदिवासी जीवन को अपने लेखन का विषय बनाया है। आदिवासी अस्मिता के सवाल पर निर्मला पुतुल, रमणिका गुप्ता, संजीव, रामधन मीणा, हरिराम मीणा, मधु कांकरिया, रामदयाल मुण्डा और रामशरण जोशी जैसे लेखकों ने उनके जीवन की त्रासदी को अपनी रचनाओं का विषय बनाया है। इनकी कहानियों में शोषण, गरीबी, लाचारी और अस्तित्व की लड़ाई लड़ रहे आदिवासी समाज को चित्रित किया गया है।

राकेश वत्स की कहानी 'अवशेष' आदिवासी स्त्री के मान-सममान को लूटने की गाथा है। इसमें दिखाया गया है कि मुख्यधारा के समाज की नजर में आदिवासी स्त्री सिर्फ मनोरंजन का साधन है। उसकी मासूमियत और भोलेपन का मुख्यधारा का समाज गलत फायदा उठाता है। इस कहानी का एक पात्र चावला आदिवासी स्त्री के मना करने पर भी जबर्दस्ती उसे शराब पिलाना चाहता है 'चावला ने औरत का फौला हाथ थाम लिया और उसमें जबर्दस्ती गिलास फंसाने की कोशिश करने लगा। पर औरत गिलास पकड़ने के लिए राजी नहीं हुई।'² उनका मकसद पूरा नहीं हुआ क्योंकि वह स्त्री अपनी आत्म चेतना तथा अस्मिताबोध के प्रति सजग एवं सतर्क है, 'औरत विफर कर चीखी नाही हमारा मंगेतर को भान होगा तो वो तुम लोगन को कच्चा चबा डालेगा।'³ उस स्त्री में अस्मिताबोध के चलते उन दरिन्दों का पुरजोर विरोध करने की क्षमता विकसित हुई है। राकेश वत्स ने अपनी इस कहानी में आदिवासी स्त्री के अस्मिता बोध को रेखांकित किया है तथा उसके गरिमापूर्ण जीवन की चाह को उजागर किया है।

आदिवासी समाज को उसके दुःखों, तनावों और यातनाओं के साथ

हिन्दी कहानी में सहज अभिव्यक्ति मिली है। विकास की अंधी दौड़ और मुख्यधारा में शामिल होने की चाह में उनको तरह-तरह की कठिनाईयों का सामना करना पड़ता है। आरक्षण जैसी सुविधा मुख्यधारा के समाज के एक खास तबके को रास नहीं आती है। आदिवासी यदि आरक्षण के द्वारा व्यवस्था में आ भी जाते हैं तो उन्हें तरह-तरह से तिरस्कृत किया जाता है। अरुण प्रकाश की कहानी 'बेला एक्का लौट रही है' इसी तरह की आदिवासी युवती की संघर्ष गाथा है। अपने परिश्रम और लगन से वह व्यवस्था में शामिल तो हो जाती है लेकिन उसके अस्मिता को मुख्यधारा के समाज से खतरा पैदा होने लगता है। नौकरी ज्वाइन करने के बाद वहाँ के चपरासी और बाबू उसके साथ भद्दा मजाक करते हैं, 'पीछे से हेड क्लर्क फुसफुसाता है— "मैडम मेरा भी ख्याल रखना" चपरासी लेखन मिसिर धमकाता है, 'मेम साहब पहले सिंह जी से पढ़ लो फिर बच्चों को पढ़ना।'⁴ उनकी नजर में वह वासना को तृप्त करने का साधन मात्र है। मुख्यधारा के ताकतवर समाज के साथ उसका तालमेल नहीं बैठता। वह उसके अस्तित्व को नष्ट करने पर उतारू है, उसे धमकाता है कि 'रानी बन जाओ नहीं तो हम रंडी बनाकर छोड़ेंगे।'⁵

कहानी में लेखक बताता है कि आदिवासी तबका पढ़ लिखकर आरक्षण की सुविधा के चलते मुख्य धारा में आ भी जाता है तो वह सभ्य समाज की नजरों में खटकता है। यह कहानी आदिवासी समाज के अस्मिता संघर्ष को दर्शाती है कि पढ़ लिखकर मुख्य धारा के समाज में सम्मानजनक स्थान पाने की चाहत रखने वाले लोगों को व्यवस्था में पांव गड़ाये बैठे सामंती सोच वाले लोग कैसे परेशान करते हैं।

रामधन लाल मीणा की कहानी 'अप्रत्याशित' में बिचौलियों, पटवारी, सरपंच आदि की हकीकत को हमारे सामने रखा गया है। विकास की सरकारी योजनाओं के लाभ से वंचित जनजातीय समूह का दर्द लेखक की चिंता का मुख्य केन्द्र है। कहानी का पात्र राजूलाल अपने अधिकारों को लेकर सचेत है, वह विचौलियों की चालों को भली-भांति समझता तथा इनके खिलाफ संघर्ष करता है। विचौलिए उसे विभिन्न प्रकार के दुश्चक्रों में फंसाते हैं लेकिन वह हिम्मत नहीं हारता है और किसी भी कीमत पर पटवारी और सरपंच को उनके कर्मों की सजा दिलाना चाहता है। इस लगन में उसने अपना सब कुछ दांव पर लगा दिया, 'राजूलाल की आर्थिक दशा बिगड़ती गई। वह यह कैसे कैसे आगे लड़ सके, ऐसी उसकी शक्ति भी क्षीण हो गई और ऐसे ही राजूलाल एक दरिद्र आदमी बन गया। उसने इस मामले में अपनी जमीन जायदाद सबको दांव पर लगा दिया और इज्जत का केश भी जीत लिया। लेकिन आगे अपील में इसका बचाव करना मुश्किल हो गया था। अपील में कोई भी वकील न रख पाने से जिला न्यायालय की तरफ से कुछ महत्वपूर्ण मुद्दे उठाये गये जिसका जवाब न दे पाने के कारण अपील में पटवारी फिर बरी होकर आ गया।'⁶

अपने अस्तित्व को बचाने के लिए राजूलाल निरन्तर संघर्ष करता है और उसे सफलता भी मिलती है किन्तु सत्ता और वर्चस्व की राजनीति के चलते कसूरवार बरी हो जाते हैं। जिससे राजूलाल बहुत निराश होता है और अपनी अस्मिता की रक्षा के लिए हथियार उठाने को मजबूर होता है। इसमें कहानीकार ने यह दिखाने का प्रयास किया है कि किस प्रकार सरकारी मशीनरी में बैठे लोगों के गलत कार्यों के कारण एक अदना से गरीब व्यक्ति हथियार उठाने को मजबूर होता है।

भावसिंह हिरवानी की कहानी 'रोता जंगल' आदिवासी विकास की हकीकत को बयां करती है। कहानी यह बताती है कि बाहरी लोगों ने तो लूटा ही अपने बीच के भी जो लोग आगे बढ़े उन्होंने भी

उन्हीं लुटेरों का साथ दिया। अन्याय, अत्याचार और अभावों में जिन्दगी काट रहे आदिवासियों की असिमता को लेकर चिंतित कचरू नामक पात्र सवाल करता है, आखिर विकास हमारे यहाँ शून्य के बराबर क्यों है? 'कहते हैं बस्तर में अब तक जितने रुपये विकास के नाम पर खर्च किये गये यदि उसे इन आदिवासियों में बांटा जाता तो प्रत्येक को एक लाख से अधिक ही मिलते। और मजे की बात तो यह है कि आजादी के बाद से अब तक इस क्षेत्र में आदिवासी ही विधायक और मंत्री रहे। फिर भी विकास के नाम पर यहाँ क्या हुआ है देख लीजिए?'⁷

कहानी में विकास-प्रक्रिया से टकराते आदिवासी समाज में अभावों से जूझते कचरू का दर्द व्यक्त हुआ है। उसका मानना है कि हम आदिवासियों ने तो मुख्यधारा के समाज को बहुत मान-सम्मान तथा इज्जत दी। उसके बदले उन्होंने हमारे स्वाभीमान और आत्म सम्मान को कुचलने की कोशिश की। कहानी बताती है कि आदिवासियों के विकास के दावे सिर्फ कागजों तक सीमित है। हकीकत में न तो सरकार को उनके अस्तित्व की चिंता है न ही विकास कार्यों को उन तक पहुंचाने की दृढ़ इच्छा शक्ति।

हरफूल सिंह 'रसिक' की कहानी 'जारी है लड़ाई अभी' आदिवासी समाज के राजनीतिक हिस्सेदारी की वकालत करती है। आदिवासी समाज की राजनीति में भागीदारी हो यह बात गांव के वर्चस्ववादी समूह ठाकुरों, सेठों और साहूकारों के गले नहीं उतरती। वे कहते हैं 'वह कोयली, काली-कलूटी, नसीबफूटी-गांव की सरपंच बनने का ख्वाब देख रही है। चींटी गुड़ की भेली हथियाना चाहती है, देखो तो?'⁸ इस ताकतवर तबके को लगता है कि यदि आदिवासी, दलित, पिछड़े सत्ता में आ जायेंगे तो हमारा वर्चस्व समाप्त हो जायेगा। समाज में बराबरी की पैरोकार यह कहानी नीति निर्माण में वंचित समूह की भागीदारी को सुनिश्चित करने की वकालत करती है।

अतः हम देखते हैं कि हिन्दी कहानी में आदिवासी अस्मिता से जुड़ी समस्याओं का यथार्थ चित्रण किया गया है। समकालीन हिन्दी कहानी में आदिवासी समाज को लेकर जो लिखा गया है उसका विषय और क्षेत्र भले ही सीमित है लेकिन उसमें विकास की प्रक्रिया से टकराते आदिवासी समाज के जीवन संघर्षों का यथार्थ स्वरूप उभरा है। हाँ यह जरूर है कि स्त्री जीवन पर लिखी गई अधिकांश कहानियों में शारीरिक शोषण वाले पहलू को ही प्रमुखता से दिखाने का प्रयास किया गया है जिससे और कई महत्वपूर्ण पक्ष सामने आने से रह गया है।

संदर्भ

1. डॉ. ब्रह्मदेव शर्मा, आदिवासी विकास : एक सैद्धांतिक विवेचन, मध्य प्रदेश हिन्दी ग्रंथ अकादमी, भोपाल, 1980, पृ. 13
2. राकेश वत्स, इन हालात में (कहानी संग्रह), नेशनल पब्लिशिंग हाउस, नई दिल्ली, 1992, पृ. 97
3. वही, पृ. 98
4. अरुण प्रकाश : भैया एक्सप्रेस, अंतिका प्रकाशन, गाजियाबाद, 2015, पृ. 15
5. वही, पृ. 19
6. रमणिका गुप्ता (संपा.) : आदिवासी स्वर और नई शताब्दी, रमणिका फाउण्डेशन दिल्ली, 2000, पृ. 243
7. बी.पी. वर्मा (संपा.) : अरावली उद्घोष (कहानी विशेषांक), अक्टूबर-दिसम्बर, 1998, उदयपुर, पृ. 18
8. वही, पृ. 24